विवाह की प्रत्यास्थापन का आदेश पति के पक्ष में होने के बाद भरण–पोषण की युक्तियुक्तता

डॉ. अबु सुफियान

एसो. प्रोफेसर (विधि)

शिब्ली नेशनल पी.जी. कालेज, आजमगढ़ (उ.प्र.)

नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास–रजत–नग पगतल में,

पीयूष स्रोत भी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।

जय शंकर प्रसाद की यह कविता महिलाओं के अधिकार एवं सम्मान की कहानी बड़ी ही सहजता से कहती है। भारतीय समाज में नारी की महत्ता को भली–भाँति पहचाना गया है और महिलाओं के अधिकार को सुरक्षित एवं संरक्षित करने का निरन्तर प्रयास समाज सुधारकों ने अपने जन–आन्दोलनो, विधायिका ने विधि निर्माण की प्रक्रिया एवं न्यायपालिका ने अपने न्यायिक विनिश्चयों के माध्यम से किया है। संवैधानिक प्रावधानों के माध्यम से महिलाओं को मूलभूत अधिकार प्रदान करके उन्हें सामाजिक समरसता प्रदत्त करने का प्रयास किया गया है तो वहीं न्यायिक निर्णयों के माध्यम से महिला सशक्तिकरण का सफल प्रयास भी न्यायालयों द्वारा किया गया है। प्रश्न यह है कि हिन्दू विवाह अधिनियम **1955 की धारा 9 के सन्दर्भ में पारित आदेश अपने पक्ष में होने के बावजूद क्या पति अपने पत्नि को गुजारा भत्ता देने के लिए बाध्य है?**

विश्व पटल पर नजर डाली जाये तो पूरे विश्व में महिलाए राजनीतिक अधिकारों से वंचित है। अन्तर योग्यता या ली मताधिकार द्वारा महिलाओं से भेदभाव करने वाले देश है। कई विकासशील देश सामाजिक और धार्मिक प्रथा के नाम पर महिलाओं के शरीर का दुरुपयोग करते हैं। सूडान और सोमालिया में भग की सिलाई, थाइलैण्ड में देह व्यापार तथा भारत में देवदासी प्रथा इसके प्रमुख उदाहरण है। इस्लामी देशों में तो महिलाओं की स्थिति बहुत निराशाजनक है। चाहे वह तालिबान हो, ईरान हो, इराक हो या अरब, वहा आज भी महिलाओं को उपभोग की वस्तु माना जाता है। वे स्वतन्त्र रूप से आगे नहीं बढ़ सकती। असमानता का यह माहौल उन्हें दबा देता है और उन्हें पुरुषों पर पूरी तरह निर्भर बना देता है।[1] महिलाओं को एक कमजोर पक्ष के रूप में मान्यता प्रदान की गयी है। हिन्दू धर्म में भी महिलाओं को अधीनस्थ का दर्जा प्रदान किया गया है। वह बचपन में पिता द्वारा, वयस्कता में पति द्वारा और बुढ़ापे में बेटे के द्वारा संरक्षित है।[2] **जकार्ता घोषणा पत्र** के अनुसार[3] महिलाएँ 50 प्रतिशत जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करती है। अधिकारिक श्रम प्रदान करने में 30 प्रतिशत का योगदान करती है। सभी कामकाजी घण्टो में 60 प्रतिशत प्रदर्शन करती है। वहीं विश्व आय का महज 10 प्रतिशत प्राप्त करती है और विश्व सम्पत्ति का 1 प्रतिशत से कम की मालिक है।

महिलाओं के संवैधानिक अधिकारों की बात करे तो भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21 सभी व्यक्तियों को प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार की बात करता है जिसमें महिलाएं भी सम्मिलित है। भारतीय उच्चतम् न्यायालय में जीवन जीने के अधिकार का विस्तार करते हुए उसमें मानव गरिमा के साथ जीने के अधिकार को भी समाहित कर दिया है। जब राज्य के द्वारा किसी के मौलिक अधिकारों का हनन होता है। तब संवैधानिक प्रणाली राज्य के कृत्यों पर रोक लगाकर अधिकारों को प्रवर्तित करने का कार्य करती है परन्तु जब महिलाओं के अधिकारों को पति के द्वारा छिनने का

प्रयास किया जाता है तब संविधानिक प्रावधानों से इतर निवारणात्मक प्रावधानों की आवश्यकता महसूस होती है। सुप्रीम कोर्ट ने यह अभिनिर्धारित किया है कि हर किसी के पास मानवीय गरिमा के साथ जीवन जीने की स्वतन्त्रता है। फिर भी असंख्य महिलाएं परिवार में विभिन्न प्रकार की दुर्भावापूर्ण व्यवहार के परिणाम स्वरूप दैनिक अकर्मण्यता का जीवन निर्वाह कर रही है। कुछ अपवादों को छोड़ दे ंतो बचपन से ही स्त्रियाँ अशुभ व्यवहारों के अधीन है। विवाहित महिलाओं के मामला में, शारीरिक हमले से लेकर उन्हें वैवाहिक घर से दूर फेकने, भवनात्मक रूप से प्रताणित करने तथा आर्थिक एवं वित्तीय साधनों से वंचित करने का व्यवहार किया जाता रहा है।

महिलाओं पर अत्याचारों की विविधता काफी बड़ी है और विडम्बना यह है कि महिलाओं के मामले में पुरुष प्रधान समाज के अन्दर बहुमत की मानसिकता अभी भी उन सीमाओं को पार नहीं कर पायी है, जिनके भीतर महिला को उपभोग की वस्तु माना जाता है। ऐसी स्थिति में महिलाओं को प्रदत्त संवैधानिक गारण्टी निरर्थक हो जाती है क्योंकि उन्हें परिवार की भीतर हिंसा का सामना करना पड़ता है। यह अवस्था केवल उनके व्यक्तित्व को ही प्रभावित नही करती बल्कि परिवार में बच्चों के व्यक्तित्व के विकास के लिए भी अनुकूल नहीं है। यह कल्पना की जा सकती है कि बच्चों के कोमल मन पर क्या प्रभाव पड़ेगा जब माँ के साथ दुव्यवहार करते हुऐ अपमानित किया जाता है। यह स्थिति परिवार में एक अस्वास्थ्यकर वातावरण का निर्माण करती है।

दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन

वास्तविक रूप से यहूदियों की विधि में दाम्पत्य अधिकारों के प्रस्थापन का उपचार मौजूद था। ऐसा प्रतीत होता है कि यहूदी विधि से यह अंग्रेजी विधि में प्रवेश कर गया और अंग्रेजी विधि से भारतीय विधि से आ गया। दाम्पत्य अधिकारों के प्रस्थापन का अर्थ है, न्यायालय द्वारा दोषी पक्षकार को निर्दोष पक्षकार के साथ रहने की आज्ञा देना। भारतीय विधि में यह उपचार अंग्रेजी शासनकाल में स्थापित हुआ। भारतीय विधि में दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन की डिक्री को प्रतिपक्षी की सम्पत्ति को कुर्क करके प्रवर्तित कराया जा सकता है।[4]

वर्तमान युग में लगभग प्रत्येक देश में दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के उपचार की आलोचना की गयी है। इसे अमानवीय घृणित तथा अनिष्टकर होने की संज्ञा दी गयी है तथा यह मानव प्रतिष्ठा और मर्यादा का हनन करता है। इस उपचार को समाप्त करने की मांग की गयी है। किसी भी साम्यवादी या समाजवादी देशों के साथ–साथ पश्चिमी देशे ने भी इसे मान्यता नहीं दी है। वहाँ भी इसे समाप्त किया जा रहा है जिन पश्चिमी देशों में ये उपचार थे।

टी. सरीथा बनाम व्यंका सुब्बायां[5] के बाद में माननीय न्यायाधीश चौधरी के अनुसार दाम्पत्य अधिकारों की प्रत्यास्थापन का अनुतोष घृणित, क्रूर, असभ्य, नृशन्स और अमानवीय है। यह व्यक्ति के मानव गरिमा के साथ जीने के अधिकार और एकान्तता के अधिकार का हनन करता है। यह एक नारी की स्वतंत्रा का हनन करता है कि वह कब, किस समय और किस तरह गर्भ धारण करे तथा सन्तानोत्पत्ति करे। इसके द्वारा राज्य उसे उसकी इच्छा से विरुद्ध गर्भाधान के लिए बाध्य करता है अतः यह अनुतोष असंवैधानिक है।

कुछ उच्च–न्यायालयों का यह मत दाम्पत्य अधिकारों की प्रत्यास्थापन की डिक्री का उद्देश्य पत्नि–पत्नी को समीप लाना है, उचित प्रतीत नहीं होता। इसे मेल–मिलाप के साधन की संज्ञा देना एक क्रूर तथा हास्यास्पद कथन है। **सरोज रानी बनाम सुदर्शन कुमार**[6] के बाद में न्यायालय ने इस अधिनियम की धारा 9 को संविधान के अनु.14 और 21 के विरुद्ध नहीं बताया परन्तु उक्त निर्णय में माननीय न्यायालय ने उन पहलुओं पर विचार नहीं किया जिसमें एक पत्नि अपने पति से अलग रहकर जीवन यापन करने हेतु बाध्य होती है। जहाँ सम्बन्ध विघटित हो चुके हो वहाँ न्यायालय की धारा 9 के तहत विवाह की प्रत्यास्थापन की डिक्री क्या उसे जोड़ सकेंगी? शोधार्थी के मतानुसार

ऐसा होना लगभग असम्भव होता है। टूटे विवाह से निकल भागने के दाव–पेचों के रूप में पति या पत्नि के दाम्पत्य अधिकारों की प्रत्यास्थापन की याचिका या उसकी डिक्री का प्रयोग करते है। इसके अतिरिक्त वैवाहिक सम्बन्ध तो लगभग समाप्त ही हो जाता है अतः उेसी कार्यवाही एक जोर दबाव के अतिरिक्त कुछ और नहीं होती है।

हिन्दू दत्तक भरण–पोषण अधिनियम 1956

वृद्धौ च माता पितरौ साध्वी भार्या सुत शिशुः।

अप्यकर्म शर्त कृत्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत।।[7]

मनु के अनुसार–''वृद्ध माता पिता साध्वी पत्नि तथा अवयस्क सन्तानों को सैकड़ों बुरे काम करके भी भरण–पोषण प्रदान करना चाहिये। पति पत्नि को भरण–पोषण प्रदान करने के लिये व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होता है। उस निमित्त पत्नि पति को तभी उत्तरदायी ठहरा सकती है जब वह पतिव्रता हो तथा नैतिक जीवन व्यतीत कर रही हो। यदि पत्नि अनैतिक जीवन व्यतीत कर रही है तो उस निमित्त पति से उसे केवल जीवित रहने भर के लिये भरण–पोषण पाने का अधिकारिणी होगी।[8]

पति के साथ रहने पर ही पत्नि को भरण–पोषण प्राप्त करने का अधिकार होता है लेकिन यदि वह उपयुक्त आधार एवं कारण होने पर पति के साथ का त्याग करती है तो उसका भरण–पोषण प्राप्त करने का अधिकार बना रहेगा। **हिन्दु नारी का पृथक् आवास एवं भरण–पोषण अधिनियम 1946** द्वारा कुछ आधार दिये गये है जिसमें पति से पृथक् रहने पर भी पत्नि को भरण–पोषण प्राप्त करने का अधिकारी मानी गयी है जिससे एक आधार यह है कि यदि उसके पृथक् निवास करने का कोई न्याययुक्त कारण है।

हिन्दू दत्तक तथा भरण पोषण अधिनियम 1956 में प्राचीन हिन्दू विधि की तरह भरणपोषण की मान्यता प्रदान करता है, जिससे पत्नि प्रमुख है। अधिनियम की धारा 18 पत्नि के भरण–पोषण के अधिकार के सम्बन्ध में उपबन्ध करती है। हिन्दू पत्नि जिसका विवाह अधिनियम के पूर्व या पश्चात हुआ अपने जीवन काल में अपने पति से भरण–पोषण पाने की अधिकारिणी होगी। इस धारा में पत्नि का हिन्दू होना आवश्यक है। इस धारा में पत्नि से तात्पर्य वैधरूप से विवाहित पत्नि से है। धारा 18(2) के अधीन यदि पति से पृथक रहकर पत्नि भरण–पोषण की मांग करती है तो उसे सती होना आवश्यक है। वह पति से पृथक रहकर भरण–पोषण चाहती है। तो उसे धारा 18(2) में उल्लिखित आधार से पर ही ऐसा अधिकार होगा। उचित आधार पर कुछ सयम के लिए पृथक रहने पर पत्नि का भरण–पोषण का अधिकार समाप्त नहीं हो जायेगा।

कब पत्नि पृथक रहकर भरण पोषण प्राप्त कर सकती है? कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हो सकती है, जब पत्नि के लिए पति के साथ रहना असम्भव हो जिसे दृष्टिगत रखकर ''हिन्दू विवाहिता नारी पृथक आवास एवं भरण–पोषण का अधिकार अधिनियम 1946 पारित किया गया तथा अधिनियम में उल्लिखित आधारों पर पति से पृथक् रहने पर भी पत्नि के भरण–पोषण के अधिकार को मान्यता दी गयी। अब इस अधिनियम को निरसित करके उसके उपबन्धों को साधारण परिवर्तनों के साथ ''हिन्दू दत्तक तथा भरण–पोषण अधिनियम 1956 की धारा 18(2) में समाविष्ट कर दिया गया है। जिसके अनुसार पति से पृथक् रहकर पत्नि को भरण–पोषण प्राप्त करने के अधिकार को मान्यता दी गयी है। इस आधार से यह स्पष्ट है कि किसी अन्य न्यायोचित आधार पर न्यायालय पत्नि को पति से पृथक् रहने पर भरण–पोषण प्रदान कर सकता है। पत्नि के लिए पृथक् रहने के लिये अन्य न्यायोचित आधार पर निर्धारण न्यायालय के विवके पर है।

अशोक कुमार सिंह बनाम षष्ठ अपर सेशन न्यायाधीश वाराणसी एवं अन्य[9] नामक वाद में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अपनी पत्नि को लैंगिक सुख प्रदान करने मैं असमर्थ होना एक प्रकार की ऐसी क्रूरता है जिसमें न्यायिक पृथक्करण की स्थिति में भरण–पोषण प्राप्त करना न्यायोचित होगा।

इसी प्रकार पत्नि अपने पृथक् निवास स्थान हेतु गृह का आवण्टन करवाने हेतु भरण–पोषण के लिए भरण–पोषण अधिनियम 1956 के अधीन डिग्री हेतु वाद कर सकती है। **खानजेमबज दाउ जी सिंह बनाम श्रीमती युमनाम निंगाल मीना**[10] और एक अन्य नामक वाद में उच्चतम् न्यायालय के न्यायमूर्ति पी.के.घोष ने मत व्यक्त किया कि अपीलार्थी पति ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि वह अपनी पत्नि का उसके पास लौटना पसन्द नहीं करता है, वर्तमान मामले में अपीलार्थी के अपने अभिसाक्ष्य से स्वयं यह स्वीकार किया है कि वह अपनी पत्नि का उसके पास लौटना पसन्द नहीं करता है। यह तथ्य कि पति अपनी पत्नि का उसके पास लौटना पसन्द नहीं करता है। यह पत्नि के लिये उसका घर छोड़ने के लिए पर्याप्त कारण होगा। इसलिये उसके पास अपीलार्थी (अपने पति) का घर छोड़ने के लिये पर्याप्त कारण था और इस आधार पर अपीलार्थी भरण–पोषण भत्ते का संदाय करने से इंकार करने को दायी नहीं है।

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के प्रावधान

धारा 125 उन व्यक्तियों के विरुद्ध त्वरित, प्रभावी और कम व्ययशील उपचार प्रदान करता है जो अपनी आश्रित पत्नि, सन्तानों और माता–पिता के भरण–पोषण में उपेक्षा करते है अथवा उनका भरण–पोषण करने से इन्कार करते है। धारा 125 में सामाजिक न्याय का एक उपाय निहित है तथा स्त्रियों तथा बच्चों की संरक्षा के लिए विशेष रूप से अधिनियमित किया गया है। कैप्टन **रमेश चन्दन बनाम बीना कौशल**[11] के प्रकरण में उच्चतम न्यायालय द्वारा कहा गया है कि यह धारा संहिता के अनुच्छेदन 15(3) और 39 द्वारा प्रवर्तित की गई। इसका उद्देश्य सामाजिक प्रयोजन को उपलब्ध करना है और आवारागर्दी तथा अकिंचनता का निवारण करना है।[12] प्रकृतिशः यह धारा औपचारिक और लाभकारी है और इन परिस्थितियों में न्यायाधीशो का यह कर्त्तव्य है कि इस धारा का अन्र्थान्वयन इस प्रकार करें कि उससे रिष्टी का दमन हो और उपचार का प्रवर्धन हो।[13]

भरण पोषण की शर्त और पत्नि का इन्कार–

यदि वह व्यक्ति जिसके विरुद्ध मजिस्ट्रेट भरण पोषण का आदेश देता है, इस शर्त पर भरण–पोषण देने की प्रस्थापना करता है कि उसकी पत्नि उसके साथ रहे और पत्नि रहने से इन्कार करती है तो मजिस्ट्रेट उसके इन्कार के कथित आधारों पर विचार कर सकता है और ऐसे प्रस्थापना के किये जाने पर भी वह इस धारा के अधीन आदेश दे सकता है यदि उसे यह समाधान हो जाता है कि आदेश देने के लिए न्यायसंगत आधार है।[14] इसका तात्पर्य यह हुआ कि यदि वह पर्याप्त कारणों से पति के साथ रहने से इंकार करती है तो वह भत्ता पाने की हकदार होगी। पति के साथ रहने से इन्कार करने का जो आधार 125 (3) के अन्तर्गत न्यायसंगत हो सकता है वह निश्चित ही धारा 125 (4) के प्रयोजन के लिए पर्याप्त आधार होगा। धारा 125 (1) में प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट के सन्दर्भ में यह प्रयुक्त किया गया है कि वह ''यह निर्देश दे सकता है'', एक प्रकार से मजिस्ट्रेट को वह विवेकीय शक्ति प्रदत्त करता है कि भरण–पोषण स्वीकृत करने की जाँच में अपने विवेक का प्रयोग कर सकता है। परन्तु विवेक का प्रयोग से न्यायिक सिद्धान्तों के आधार पर तथा प्रत्येक मामले के गुणावगुण पर विचार करके करना चाहिए।[15]

निष्कर्ष

पितृ–सत्ता युग के प्रारम्भ से ही पति–गृह में पत्नि की स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। अपने जीविकोपार्जन का भार स्वयं उसका नहीं रहा है। पत्नि के भरण–पोषण के पति के दायित्व की एक पृष्ठभूमि रही है। दूसरी पृष्ठभूमि पति–पत्नि के सम्बन्धों की रही है। सभी समाज में वैवाहिक जीवन के दौरान पत्नि का भरण–पोषण करने के पति के दायित्व को मान्यता प्रदान की गयी है। पत्नि के भरण–पोषण का दायित्व किसी अनुबन्ध के अन्तर्गत उपार्जित नहीं होता है, बल्कि ये पति–पत्नि के विधिक सम्बन्धों के अन्तर्गत सृजित होता है। हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 25 के अन्तर्गत पति का यह दायित्व विवाह विच्छेद के पश्चात भी विद्यमान रहता है।

हिन्दू दत्तक व भरण–पोषण अधिनियम की धारा 18(2) (छः) के अन्तर्गत पत्नि अन्य कोई न्यायोचित आधार पर भी पति से पृथक् रहकर भरण–पोषण की मांग कर सकती है। यह अपशिष्ट खण्ड है। सुझााव के तौर पर यह कहा जा सकता कि ''न्यायोचित आधार' का अर्थ उपरोक्त खण्ड में वहीं होना चाहिए, जो हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 की धारा 9, दाम्पत्य अधिकारों की पुर्नस्थापना के सम्बन्ध में 'युक्तियुक्त' का है। यदि पत्नि के भरण–पोषण का दावा किसी भी एक आधार पर पूर्णतया सिद्ध नहीं होता तो उस उक्त धारा की सहायता से भरण–पोषण प्रदान किया जा सकता है।

इसी प्रकार दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 में सामाजिक न्याय का एक उपाय निहित है और स्त्रियों बच्चों की सुरक्षा के लिए विशेष रूप से अधिनियमित किया गया है। चन्दन बनाम बोना कौल के प्रकरण में उच्चतम् न्यायालय द्वारा कहा गया है कि यह धारा संविधान के अनु.15 (3) और 39 द्वारा प्रवर्तित की गयी है। इसका उद्देश्य सामाजिक प्रयोजनों को उपलब्ध कराना और आवारागर्दी एवं अकिंचनता का निवारण करना है। यह प्रावधान महिलाओं को मानवीय गरिमा के साथ जीवन जीनो की उपलब्धता के लिए अनुकूल कानूनी व्यवस्था बनाने के उद्देश्य से है जिसके अन्तर्गत वह पति से अलग रहते हुए भरण–पोषण प्राप्त करते हुए समाज में सम्मान के साथ जीवन यापन करने का साधन उपलब्ध करती है।

यह तत्काल महसूस किया जा सकता है कि महिलाओं को देश में विकास में एक मजबूत और जोरदार ताकत बनने के लिए आर्थिक और सामाजिक रूप से सशक्त होना चाहिए। वर्तमान शताब्दी में महिलाओं को स्वयं अपनी क्षमता और विकास के अपने अधिकार के बारे में अधिक जागरुकता की आवश्यकता है।

सन्दर्भ–

1- Ratna Sarkar "Gender Inequality in India; An overview" Social Defence-A quarterly Journal National Institute Social-Defence, Minstory of Social Justice Empowerment, Goverment of India, New Delhi, Vol.53, No.152, April, 2002

2- Lakshmi Menon : "Women in India and Abroad", Women of India, Forward by Jawahlal Nehru Publication Division; Ministory of Infor mation and Bradcousting, Government of India, p.54.

3. According to the Jakarta Declaration for "The advancement of the Women in Asia and the Pacific" Organized by the economic and Social commission for Asia and the Pacific, United Nations, New York, June 1994.

4. सिविल प्रक्रिया संहिता, आदेश 21 नियम 32

5. 1983 आन्ध्र प्रदेश 356

6. 1984, सु.को. पृ.1562

7. मिताक्षरा से उद्धृत, डा. वी.एन. एम. त्रिपाठी की पुस्तक, लेक्चर्स ऑफ क्रिमिनल बोर्ड से भी उद्धृत।

8. हिन्दू विधि, कमलेश शुक्ल, सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, चतुर्थ संस्करण, 2008

9. 1996 उम.नि.प.254

10. 1995 दा.नि.पा. 12

11. ए.आई.आर. 1978 एस.सी.1807
12. चतुर्भुज बनाम सीताबाई, 9 एल.जे. समाचार पत्र 9–4, 2007
13. मुरलीधर चतुर्वेदी, दण्ड प्रक्रिया संहिता, चौतीसवाँ संस्करण, 2013, पृ.147
14. धारा 125 (3) का द्वितीय परन्तुक
15. मोहमद अय्यूब बनाम जैबुलनिस्सा, 1974, क्रिमिनल लॉ जर्नल 1237 (इलाहाबाद)